P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-2, November-2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

समाज दर्शन की प्रकृत्ति एवं अध्ययन क्षेत्र

पीताम्बर दास
सहायक प्राध्यापक,
दर्शन शास्त्र विभाग,
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

सारांश

समाज दर्शन को समझने के लिए हमें समाजदर्शन की प्रकृति एवं अध्ययन क्षेत्र को अवश्य जानना चाहिए क्योंकि समाजदर्शन की प्रकृति एवं अध्ययन क्षेत्र ही समाजदर्शन को समाजशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र से अलग करते है। प्रकृति की दृष्टि से समाजदर्शन नियामक एवं अमूर्त विषय के रूप में दिखाई देता है क्योंकि हम समाजदर्शन एवं इसकी मुख्य बातों को मानव एवं समाज के व्यवहार में अनुभव करते है। इस दृष्टि से समाजदर्शन एक व्यावहारिक विषय के रूप में दिखाई देता है। अध्ययन क्षेत्र की दृष्टि से समाजदर्शन अपने अध्ययन की अधिकांश सामग्री समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र से ग्रहण करता है। समाजदर्शन अपनी प्रकृति के अनुसार इस अध्ययन सामग्री की समीक्षा करने के बाद समाज के मूल्य एवं आदर्शों की स्थापना करता है।

मुख्य शब्द : समाज, दर्शन, प्रकृति, अध्ययन, क्षेत्र, नियामक, अमूर्त, पद्धति, मूल्य, आदर्श, समीक्षा, सामाजिक विज्ञान।

प्रस्तावना

जहां तक समाज दर्शन की प्रकृत्ति का प्रश्न है तो उत्तर में हम समाज दर्शन की प्रकृति को अमूर्त रूप में पाते है क्योंकि समाज दर्शन मानव समाज के मध्य पाई जाने वाली अमूर्त व्यवस्था का अध्ययन करके इसके मूल्यों एवं आदर्शों की स्थापना करता है। यहां हमें समाज दर्शन की प्रकृति नियामक दिखाई देती है क्योंकि समाज दर्शन अध्ययन के तथ्यों को अन्य समाज विज्ञानों से लेकर नियामक विज्ञान के रूप में इन तथ्यों में आदर्शों एवं साधनों की खोज करना मूल कार्य प्रतीत होता है। जिसमें सामाजिक अन्तर्क्रियाओं और सामाजिक सम्बन्धों के आदर्श नियमों की स्थापना की जाती है। समाज दार्शनिक हमारी सामाजिक सत्ता में निहित सामान्य शुभ एवं आदर्शों का पता लगाता है और उस आदर्श की ओर ले जाने वाले साधनों का मूल्यांकन करता है। अमूर्त एवं नियामक होने के साथ–साथ समाज दर्शन की प्रकृति दार्शनिक भी दिखाई देती है और दार्शनिक प्रकृति होने के कारण ही समाजदर्शन सामाजिक विज्ञानों से भिन्न है। दार्शनिक समस्याएं विज्ञानों की सामान्य समस्याएं है। समीक्षात्मक और समन्वयात्मक पहलू में दर्शन की समस्याएं विभिन्न विज्ञानों की मान्यताओं और निष्कर्षों की समीक्षा और समन्वय हैं समाज दार्शनिक सामाजिक विज्ञानों की सामान्य समस्याओं को सुलझाता है और उनकी मान्यताओं और निष्कर्षों की समीक्षा और समन्वय करता है। दार्शनिक प्रकृति होने के कारण समाजदर्शन का दृष्टिकोण उदार, जिज्ञासु, चिन्तनशील, अनुभव और तर्क से निर्देशित एवं समीक्षात्मक है। यह दार्शनिक विधियां अपनाता है और उनके द्वारा दार्शनिक निष्कर्षों पर पहुँचता है।

साहित्यावलोकन

इस शोध पत्र से सम्बन्धित मुख्य सामग्री डॉ0 शिवभानु सिंह जी की पुस्तक ''समाज दर्शन का सर्वेक्षण'' के पृष्ठ संख्या 1–21 पर से ली गई है, यह पुस्तक शारदा पुस्तक भवन, 11, युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, उ0 प्र0 से वर्ष–2001 में प्रकाशित हुई है। कुछ सामग्री जे0 एस0 मेकेंजी की पुस्तक "Out lines of Social Philosophy" जिसके हिन्दी रूपान्तकार डॉ0 अजित कुमार सिन्हा जी है के पृष्ठ संख्या 11–12 पर से ली गई है। यह पुस्तक राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2009 में प्रकाशित हुई है। कुछ सामग्री डॉ0 जगदीशसहाय श्रीवास्तव की पुस्तक ''समाज–दर्शन की भूमिका के पृष्ठ संख्या–1 से 7 पर से ली गई है। यह पुस्तक विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी द्वारा वर्ष–2002 में प्रकाशित हुई है। कुछ सामग्री डॉ0 बी0 एन0 सिन्हा जी की पुस्तक ''समाज दर्शन सामाजिक व राजनीतिक दर्शन'' के पृष्ठ संख्या 1–15 पर से भी ली गई है। यह पुस्तक सपना अशोक प्रकाशन, रामनगर, वाराणसी द्वारा वर्ष–2003 में प्रकाशित हुई है। इस शोध पत्र से सम्बन्धित कुछ सामग्री डा0 रामजी की अति

महत्वपूर्ण पुस्तक ''समाजदर्शन के मूल तत्त्व'' के पृष्ठ संख्या 1–21 पर से भी सन्दर्भित की गई है। यह पुस्तक राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी, जयपुर द्वारा वर्ष– 1983 में प्रकाशित हुई है। कुछ सामग्री डॉ0 पिताम्बरदास जी के शोध पत्र 'मानव–स्वभाव की उत्पत्ति' श्रृंखला एक शोध परक वैचारिक पत्रिका, वो0 5, अंक–10, जून–2018 के पृ0 सं0. 58–64 से ली गई है। यह पत्रिका सोशल रिसर्च फाउण्डेशन, कानपुर द्वारा प्रकाशित है। कुछ सामग्री उक्त फाउण्डेशन द्वारा ही प्रकाशित डॉ0 पिताम्बर दास जी के शोध 'समाज की दार्शनिक पृष्ठभूमि' वो0 6, अंक–4, मई–2018, पीरियोडिक रिसर्च, अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका के पृ0 सं0 44–50 से ली गई है। डॉ0 पिताम्बर दास जी के ही उक्त फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित शोध पत्र, संस्थाओं की उत्पत्ति एवं उनके दार्शनिक आधार, श्रृंखला एक शोध परक वैचारिक पत्रिका, वो0 5, अंक–12, अगस्त–2018, पृ0 सं0. 28–33 से ली गई है।

शोध पत्र का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य समाजदर्शन की प्रकृति एवं अध्ययन क्षेत्र के बारे में अब तक बताई गयी बातों की समीक्षा करना है और यह सिद्ध करना है कि समाजदर्शन को जानने एवं समझने के लिए सर्वप्रथम समाजदर्शन की प्रकृति एवं अध्ययन क्षेत्र को जानना एवं समझना अतिआवश्यक है। इसी दृष्टि से यह शोध पत्र लिखा गया है। इस शोध पत्र में वे सभी नवीन एवं महत्वपूर्ण सामग्री विद्यमान है, जिसके अध्ययन से समाजदर्शन का विद्यार्थी समाजदर्शन को अच्छी तरह से जान सकता है। इसके अलावा इस शोध पत्र का उद्देश्य समाज एवं समाज दर्शन की प्रकृति को स्पष्ट रूप से अलग करना है।

समाजदर्शन की प्रकृति

समाजदर्शन दर्शनशास्त्र की एक ऐसी मुख्य शाखा है, जिसकी आरम्भिक विवेचना हमें यूनान के दर्शन में मिलती है। सर्वप्रथम यूनानी विचारकों ने ही मानवीय व्यवहार पर सामाजिक एवं आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के प्रभाव का प्रतिपादन किया है और सामाजिक प्रश्नों की सम्यक् विवेचना का श्रेय प्रसिद्ध यूनानी सम्प्रदाय सोफिस्ट को जाता है, जिनका समाजदर्शन व्यावहारिक एवं मानवादी था। मानववादी सोफिस्ट विचारक प्राटेगोरस के अनुसार मानव ही सब वस्तुओं का मापदण्ड है। इस तरह से सोफिस्ट विचारकों ने व्यक्ति के महत्व को प्रमुख स्थान दिया। सुकरात ने अपने समाजदर्शन के अन्तर्गत सामाजिक एवं नैतिक बातों की विवेचना की है। सुकरात ने सद्गुण को ज्ञान तथा दुर्गुण को अज्ञान मानते हुए नैतिकता को अति महत्वपूर्ण स्थान दिया। 'सद्गुण ही ज्ञान है' का प्रतिपादन करते हुए सुकरात ने विवेकयुक्त व्यक्तियों को ही आदर्श सामाजिक व्यवस्था का निर्माता माना। सुकरात के शिष्य प्लेटो ने भी शिक्षा को मानवीय व्यक्तित्व के विकास का निर्माता माना। प्लेटो की रिपब्लिक के अनुसार दार्शनिकों को ही राज्य का भार सौंपा जाना चाहिये क्योंकि दार्शनिकों को अच्छे–बुरे, न्याय–अन्याय और उचित–अनुचित का सम्यक् ज्ञान रहता है तथा वे पूर्णतया शान्तचित्त और निष्पक्ष होते है। प्लेटो के अनुसार व्यक्ति उस सामाजिक व्यवस्था का परिणाम होता है जिसमें वह विकसित होता है। मानव एवं समाज में प्लेटो ने मानव को अत्यधिक महत्व दिया। उनके अनुसार समाज की सभी संस्थाओं को राज्य के अधीन रहना चाहिए। प्लेटो ने आदर्श समाज में वंशानुगत जाति भेदों को कोई स्थान नहीं दिया है ताकि अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीन विकास के लिए सबको समान अवसर मिल सके। प्लेटो के दर्शन में सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रमुख स्थान दिया गया है। समाज में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए राजनीतिक समानता और सामाजिक समानता का होना आवश्यक है।

अरस्तू अपने समाजदर्शन में प्लेटो से भिन्न मत व्यक्त करते हुए कहते है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य समाज में ही जन्म लेता है और समाज में ही अपना जीवन–यापन करता है। मनुष्य अपने को कभी समाज से अलग नही कर सकता तथा समाज से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। सामाजिकता मानव स्वभाव का एक आवश्यक अंग है। अपूर्ण होने के नाते मनुष्य को अन्य मनुष्यों की आवश्यकता का अनुभव होता है अर्थात् सम्पूर्ण समाज में परस्पर निर्भरता अथवा परस्पर पूरकता अथवा सापेक्षता का सिद्धान्त लागू होता है। बिना एक दूसरे की सहायता और अपेक्षा के मानव सम्यक् रूप से सामाजिक जीवन यापन नही कर सकता। मानव की विभिन्न आवश्यकतायें, विभिन्न इच्छाएं एवं उद्देश्यों की पूर्ति समाज में ही पूरी हो सकती है। अरस्तू के अनुसार समाज में प्रत्येक व्यक्ति को समानता और स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये क्योंकि ऐसे समाज में ही अच्छे नागरिकों का निर्माण संभव है। वह मनुष्य जो समाज में नहीं रह सकता अथवा जिसकी अपनी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह अपने को स्वयं में पूर्ण मानता है, वह अवश्य ही या तो पशु है अथवा देवता।

इस प्रकार हम कह सकते है कि समाज दर्शन का अस्तित्व किसी न किसी रूप में सदैव ही रहा है, चाहे यूनानी दार्शनिक विचारधारा का काल हो या प्राचीन भारतीय विचारधारा, एक आदर्शमूलक विज्ञान के रूप में हम समाजदर्शन की उपयोगिता से असहमत नहीं हो सकते। समाजदर्शन मानव मात्र की सामाजिक एकता में अपना विश्वास प्रकट करता है तथा वह मानव जीवन के किसी विशेष पक्ष के महत्व की व्याख्या उस सामाजिक एकता के सन्दर्भ में ही प्रस्तुत करना चाहता है। समाज का प्रमुख लक्ष्य उन मूल्यों, उद्देश्यों, प्रयोजनों एवं आदर्शों का अध्ययन करना है जो किसी भी सुन्दर समाज में विकसित होते हुये दिखाई देते हैं। इस प्रकार समाजदर्शन समाज के आदर्शों का अध्ययन है। समाज के उच्चतम आदर्शों की स्थापना और फिर उनके द्वारा सामाजिक तथ्यों का मूल्यांकन यही समाजदर्शन का लक्ष्य है। कुछ विद्वानों के अनुसार समाजदर्शन में विवेच्य विषयों का अध्ययन अनेक विशिष्ट विज्ञान करने लगे हैं और इस कारण समाजदर्शन की कोई विशेष उपयोगिता नहीं रह गयी है। परन्तु ऐसे विद्वान इस बात की उपेक्षा नहीं कर सकते कि विशिष्ट विज्ञानों के मध्य समन्वय करने का कार्य केवल समाजदर्शन ही कर सकता है। अनेक विशिष्ट विज्ञानों से सामाजिक चेतना के किस पहलू पर प्रकाश पड़ता है, इसका पता लगाना समाजदर्शन का ही कार्य

है। पुनः समाजदर्शन एक आदर्शमूलक विज्ञान है, जबकि विशिष्ट विज्ञान प्राकृतिक विज्ञान है। समाजदर्शन मनुष्य के आर्थिक, सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक जीवन के विविध पक्षों की विवेचना करते हुये एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाता है और अपने इसी लक्ष्य के कारण ही यह समाजशास्त्र से स्वतंत्र अपना अस्तित्व सिद्ध कर पाता है। समाजदर्शन संश्लेषणात्मक है, वहीं पर समाजशास्त्र विश्लेषणत्मक है। वास्तव में समाजदर्शन सामाजिक जीवन की संपूर्णता में विश्वास करता है और मनुष्य को व्यक्ति नही अपितु मानव के रूप में देखना चाहता है। समाज के अभाव में मनुष्य का जीवन दुर्लभ है और समाज का उन्मूलन असंभव है। जब तक मानव–सभ्यता रहेगी तब तक समाज भी रहेगा और तभी तक समाजदर्शन भी रहेंगा। अतः समाजदर्शन एक जीवित दर्शन ही नहीं है, अपितु सदैव जीवित रहने वाला दर्शन है। इस प्रकार समाजदर्शन का स्वरूप एवं प्रकृति एक जीवित दर्शन है, जो तब तक रहेगा, जब तक इस धरती पर मानव रहेगा।

समाजदर्शन का अध्ययन क्षेत्र

समाज दर्शन के अध्ययन क्षेत्र की जब हम बात करते है तो पाते है कि समाज दर्शन के अन्तर्गत उन सभी बातों का अध्ययन दार्शनिक दृष्टिकोण से किया जाता है जिन बातों का अध्ययन प्रायः समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान में किया जाता है परन्तु समाज दर्शन का अपना एक विशेष अध्ययन क्षेत्र है। जे0 एस0 मैकेन्जी के अनुसार, '' समाज दर्शन को पूर्ण रूप से एक पृथक् विषय के रूप में अध्ययन का अवसर वर्तमान समय में ही प्राप्त हुआ है और इसका एक सुनिश्यित अर्थ में प्रयोग होने लगा है। इसका समाजशास्त्र से अलग अपना ही क्षेत्र है। समाजशास्त्र की व्याख्या यदि व्यापक अर्थों में की जाए तो समाज दर्शन को उसके एक निश्चित अंग के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा। समाजशास्त्र भाषा सम्बन्धी शंकाओं से युक्त एक अस्पष्ट शब्द होने पर भी व्यापक अर्थ वाला माना जाएगा। इससे मानव समाज के उद्भव, उसके विभिन्न रूपों का अध्ययन, नियम, रूढ़ाचार, संस्था, भाषा, विश्वास, विचारधारा, भावना और कार्य आदि की जानकारी प्राप्त करना है। अतः यह कहा जा सकता है कि मानव जीवन की समस्त जानकारी समाजशास्त्र के अन्दर ही आ जाती है। समाजशास्त्र का विभिन्न समस्याओं से उसी तरह का सम्बन्ध है जिस तरह अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि की समस्याओं से है। यह एक ऐसा विषय है जिसे कठिनाई से ही कोई एक व्यक्ति एक पुस्तक में पूर्णतः वर्णित कर सके। इसे उसी तरह विभागों में बाँटना पड़ेगा जैसे जीव विज्ञान को वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान तथा शरीर विज्ञान के अनेक उपविभागों में विभक्त किया जाता है। समाज दर्शन का क्षेत्र समाजशास्त्र से अधिक सीमित है। वह अपनी एक सीमा में बँधा हुआ है। वह समाजशास्त्र की विशेष शाखाओं से उसी तरह भिन्न है जिस तरह सामान्य रूप में दर्शनशास्त्र अन्य विज्ञानों से पृथक् है।

विज्ञान के बारे में जे0 एस0 मैकेन्जी बताते है कि विज्ञान विशेष तथ्यों अथवा सामान्य सत्यों या इन दोनों का समूह होता है जिसे खोजने के लिए कुछ–एक परिमित पदार्थों तक सीमित रहने वाली संयोजित विधियाँ भी सम्मिलित रहती हैं। उसमें उन तथ्यों और सत्यों को उसी सीमित क्षेत्र में व्याख्या करने और समझने का दृष्टिकोण भी निहित रहता है। मानव जीवन, जो बहुत कुछ अंशों में हमेशा सामाजिक होता है, जो कुछ ऐसे उद्देश्य उपस्थित करता है, जिनके अध्ययन से विभिन्न विधियाँ निर्धारित की जा सकें तथा बहुत से रूचिकर एवं महत्वपूर्ण तथ्यों तथा सत्यों की पुष्टि की जा सके। समाजशास्त्र का इनसे सम्बन्ध है, परन्तु इसे उनसे उसी प्रकार पृथक् किया जा सकता है जिस प्रकार मानव जीवन के व्यक्तिगत पहलू को सामाजिक जीवन से। यदि मानव विज्ञान से मानवता के साधारण अध्ययन का अर्थ लिया जाता है तो उसे दो प्रमुख शाखाओं अर्थात् व्यक्तिशास्त्र एवं समाजशास्त्र के रूप में विभाजित किया जा सकता है। इनमें से भी प्रत्येक को अनेक पृथक् शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है। दूसरी ओर दर्शनशास्त्र, जिसकी विज्ञान से अलग अपनी स्थिति है, कुछ विशेष तत्वों के बारे में चिन्तन का एक प्रयास है। अपने व्यापक उद्देश्यों के रूप में वह अपने अनुभवात्मक संसार के विशेष तथ्यों और सत्यों की व्याख्या करने की चेष्टा करता है जो सम्पूर्ण विश्व अथवा ब्रह्माण्ड का अंग या पहलू है। समाज दर्शन, विशेष रूप से मानव जाति के सामाजिक संगठन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और उस संगठन के साथ वह, मानव जीवन के सामाजिक पहलुओं के महत्व की व्याख्या करने का प्रयास करता है। यह विशेष रूप से जीवन के मूल्यों, उद्देश्यों तथा आदर्शों का अध्ययन है, परन्तु उनका अध्ययन नहीं जो प्राथमिक रूप से अपेक्षित है, परन्तु जीवन के इन रूपों का अर्थ और महत्व लिया जाता है अर्थात् कुछ विशेष समाज विज्ञान जिन बातों की पुष्टि करते हैं, यह उनकी उपेक्षा करता है। दर्शनशास्त्र में किसी भी बात की उपेक्षा करना भयावह है। समाज दर्शन का विशेष कार्य तथ्यों की खोज करना नहीं क्योंकि इसे अन्य विज्ञानों से अपने तथ्य ग्रहण करने पड़ते हैं, परन्तु यह उनका विश्लेषण करने की चेष्टा करता है।

समाज दर्शन के अध्ययन क्षेत्र के बारे में विवेचना करते हुए डॉ0 शिवभानु सिंह जी ने अपनी पुस्तक ''समाज दर्शन का सर्वेक्षण'' के पृष्ठ संख्या 7–8 पर लिखा है कि समाज दर्शन मानव और समाज के विभिन्न आदर्शों, मूल्यों और उद्देश्यों का मूल्यांकन करता है तथा इससे यह स्पष्ट होता है कि समाज दर्शन के अन्तर्गत विभिन्न विषय हैं जैसे–समाज तथा सामाजिक जीवन के अन्य संगठन, सदाचार, शिक्षा, धर्म, अर्थ अथवा सम्पत्ति, न्याय आदि। समाज दर्शन के विषय क्षेत्र का निर्धारण करते हुए हम हॉबहाउस का मत भी प्रस्तुत कर सकते हैं जिन्होंने समाज दर्शन के क्षेत्र के बारे में कहा है कि समाज दर्शन का विषय सुखी जीवन के सार के रूप में मानव क्षमता की समन्वय योग्य पूर्णता का प्रत्यय है। इस विचार से यह प्रतीत होता है कि समाज दर्शन के अन्तर्गत मानव क्षमताओं को सुनिश्चित किया जाता है तथा उन उपायों अथवा सिद्धान्तों का उल्लेख किया जाता है जिनका अनुपालन मानव क्षमताओं को पूर्णता प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है। उनके अनुसार समाज दर्शन यह प्रयास करता है कि मानव जीवन किस प्रकार सुखमय हो

सकता है और उत्तरोतर प्रगति के पथ पर बढ़ सकता है। इस प्रकार समाज दर्शन मानव जीवन को समन्वित करने का प्रयास करता है और उन विभिन्न उपायों की स्थापना करता है जिससे कि इस लक्ष्य की सिद्धि संभव हो सके। समाज दर्शन का प्रमुख कार्य संस्थाओं के उद्देश्य निर्धारित करना है तथा मानव एवं समाज के मध्य एकरूपता और समन्वय स्थापित करना है। इसे यह भी निर्धारित करना होता है कि कौन सी सामाजिक संस्था मानव एवं समाज दोनों के युगपद उत्कर्ष के लिए प्रयत्नशील है। समाज दर्शन को ऐसे आदर्शों की स्थापना करनी चाहिए जिससे मानव एवं समाज के मध्य संघर्ष की सभी संभावना समाप्त हो जाये और दोनों ही पूर्णतया विकास कर सकें। इसके साथ ही प्रत्येक समाज विज्ञान की पूर्व मान्यताओं एवं प्राक्कल्पनाओं का विवेचन करना समाज दर्शन का प्रमुख कार्य है। समाज दर्शन वस्तुतः सामूहिक जीवन और उनकी व्यवस्थाओं का अध्ययन है। समाज दर्शन का अन्तिम लक्ष्य मानव और समाज दोनों को ही सुखी, शान्त और विकसित देखना है जिससे दोनों ही अपने–अपने लक्ष्य की सिद्धि में सफल हो सकें।

डॉ0 जगदीश सहाय श्रीवास्तव जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक समाज–दर्शन की भूमिका में समाज दर्शन के अध्ययन क्षेत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जहाँ तक समाज–दर्शन के क्षेत्र की बात है, उनका सम्बन्ध सम्पूर्ण मानव–समाज से है। मानव समाज के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने के लिए विभिन्न सामाजिक विज्ञान है। समाज–दर्शन का सम्बन्ध सामाजिक मूल्यों, आदर्शों, उद्देश्यों तथा लक्ष्यों से है। अतः समाज दर्शन का अध्ययन क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

1. समाज या सामाजिक संस्थाओं का आधार प्राकृतिक है अथवा कृतिम ? यदि आधार प्राकृतिक है, तो समाज का कौन–सा रूप स्थायी अथवा शाश्वत है। साथ–साथ हमें यह भी देखना है कि समाज की वह कौन सी विशेषता है जिसके कारण बाह्य परिवर्तनों के बावजूद उसमें एक सामान्य व स्थायी तत्त्व बना रहता है। यदि समाज का आधार कृतिम हैं तो समाज के अध्ययन का अर्थ उन परिस्थितियों का अध्ययन करना होगा जिनके कारण भिन्न काल में समाज का भिन्न रूप मिलता है। प्लेटो, अरस्तू एवं स्टोइक्स के अनुसार समाज का एक प्राकृतिक आधार है जो मनुष्यों के स्वभाव में निहित है। इसके विपरीत, सोफिस्ट्स के अनुसार समाज कृतिम आधारों पर निर्मित हैं। इस विवाद को ध्यान में रखकर उसके विषय में निर्णायक मत स्थित करना समाज–दर्शन का प्रमुख अध्ययन क्षेत्र है।
2. समाज अथवा सामाजिक संस्थाओं के क्या उद्देश्य है ? प्रत्येक सामाजिक संस्था किसी न किसी सामाजिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए ही स्थापित की जाती है। समाज–दर्शन का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वह पता लगाए कि कोई सामाजिक संस्था, कहाँ तक उस उद्देश्य की सिद्धि कर रही हैं।
   सामाजिक संस्थाओं के क्या उद्देश्य होने चाहिए ? इसका निर्धारण भी समाज–दर्शन करता है। मानव एवं समाज में मानव का ही प्राधान्य है। मानव के व्यवस्थित समूह को ही तो समाज कहते है। अतः मानव एवं समाज के लक्ष्यों में एकरूपता होनी चाहिए। समाज, मानव के चरम उद्देश्यों की सिद्धि का एक साध नही है। समाज–दर्शन का यह कर्त्तव्य है कि वह देखे कि कौनसी सामाजिक संस्था मानव एवं समाज दोनों के युगपद् उत्कर्ष के लिए प्रयत्नशील है। यदि मानव एवं समाज के लक्ष्यों में संघर्ष है तो समाजदर्शन के अनुसार वह समाज उपयोगी नहीं है।
3. प्रत्येक समाज विज्ञान की पूर्व मान्यताओं एवं प्राक्कल्पनाओं का विवेचन करना समाजदर्शन का लक्ष्य है।
4. प्रत्येक समाज विज्ञान के अध्ययन की अपनी वैज्ञानिक पद्धति होती है, जैसे कोई निरीक्षण पद्धति को अपनाता है, तो कोई ऐतिहासिक पद्धति को। समाजदर्शन इन सभी वैज्ञानिक पद्धतियों का मूल्यांकन करके यह निश्चित करने का प्रयास करता है कि इसमें कौनसी पद्धति समाज के उच्च आदर्शों की प्राप्ति में सहायक हो सकती है। अतः समाज के उच्चतम आदर्शों की स्थापना करना भी समाजदर्शन का मुख्य कार्य है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते है कि समाजदर्शन एक ऐसा महत्वपूर्ण विषय है जिसकी प्रकृति नियामक एवं अमूर्त है। समाजदर्शन की दृष्टि से समाज मानव के स्वभाव में ही विद्यमान है। इसीलिए अरस्तू जैसे महान दार्शनिकों ने मानव को एक सामाजिक प्राणी बताया है, क्योंकि मानव ही एक ऐसा जीव है जो अपना समाज बनाकर रहता है और अन्य जीवों में समाज की प्रकृति केवल भूख मिटाने तक सीमित है, जिसके लिए वे झुण्ड बनाकर रहतें हैं और आवश्यकता पूर्ण होने के बाद अलग–अलग हो जाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ0 रामनाथ शर्मा, समाज दर्शन, केदारनाथ रामनाथ एण्ड क0, मेरठ, वर्ष–1998*
2. *डॉ0 बी0 एन0 सिन्हा, समाज दर्शन–सामाजिक व राजनीतिक दर्शन, सपना अशोक प्रकाशन, रामनगर, वाराणसी।*
3. *राहुल सांकृत्यायन, मानव–समाज, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष–2012*
4. *जे0 एस0 मेकेन्जी, समाज–दर्शन की रूपरेखा, रूपान्तरकार, डॉ0 अजीत कुमार सिन्हा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, वर्ष–1962*
5. *संगम लाल पाण्डेय, समाज दर्शन की एक प्रणाली, इलाहाबाद।*
6. *डॉ0 ह्रदय नारायण मिश्र, समाज दर्शन–सैद्धांतिक एवं समस्यात्मक विवेचन, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष–2009*
7. *डॉ0 रामजी सिंह, समाजदर्शन के मूल तत्त्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1983*
8. *डी0 आर0 जाटव, भारतीय समाज एवं विचारधाराएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, वर्ष–2002*
9. *हेंड्रिक विलोम फ़ान लून. हिन्दी अनुवाद. अरूण कुमार, प्रकाशन संस्थान, अंसार रोड़, नई दिल्ली, वर्ष–2014*

10. *डॉ0 पिताम्बरदास, सामाजिक पुनर्निर्माण में डॉ0 भगवानदास के धर्म–दर्शन का योगदान, विश्वज्ञान अध्ययन संस्थान एवं अंकित प्रकाशन, मडॉव, रोहनिया, वाराणसी, वर्ष–2014*
11. *प्रो0 अशोक कुमार वर्मा, प्रारम्भिक समाज एवं राजनीति दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, वर्ष–2006*
12. *जगदीशसहाय श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष–2002*
13. *डॉ0 शिवभानु सिंह, समाज दर्शन का सर्वेक्षण, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, वर्ष–2001*
14. *डॉ0 पिताम्बर दास, शोध पत्र, मानव–स्वभाव की उत्पत्ति, वो0 05, अंक–10, जून–2018, श्रृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका, सोशल रिसर्च फाउण्डेशन, कानपुर, उ0 प्र0 द्वारा प्रकाशित।*
15. *डॉ0 पिताम्बर दास, शोध पत्र, समाज की दार्शनिक पृष्ठभूमि, वो0 6, अंक–4, मई–2018, पीरियोडिक रिसर्च पत्रिका, सोशल रिसर्च फाउण्डेशन, कानपुर, उ0प्र0 द्वारा प्रकाशित, पृ0 सं0 44–50.*
16. *डॉ0 पिताम्बर दास, शोध पत्र, संस्थाओं की उत्पति एवं उनके दार्शनिक आधार, श्रृंखला एक शोध परक वैचारिक पत्रिका, वो0 5, अंक–12, अगस्त–2018, सोशल रिसर्च फाउण्डेशन, कानपुर, उ0 प्र0 द्वारा प्रकाशित।*